बी० ए० भाग-3
हिन्दी - प्रतिष्ठा
पेपर - 7
'प्रयत्नों का वर्गीकरण'

रमेश कुमार यादव
हिन्दी - विभाग
डी. के. कालेज, डुमरॉव बक्सर

प्रयत्नों का वर्गीकरण -

प्रयत्न मुख्यत: दो प्रकार के हैं -

क - आभ्यन्तर प्रयत्न

ख - बाह्य प्रयत्न

आभ्यन्तर और बाह्य प्रयत्न का सम्बन्ध मुखविवर के भीतरी और बाहरी भाग से है। मुखविवर के भीतर (ओष्ठ से कंठ तक) जो प्रयत्न किये जाते हैं, वे आभ्यान्तर कहलाते हैं और कंठ के बाद नीचे जो प्रयत्न होते हैं, वे बाह्य कहलाते हैं। एक दृष्टि से कंठ के नीचे के प्रयत्न अधिक आभ्यन्तर कहलाने चाहिए, किन्तु उनकी बाह्यता मुखविवर की दृष्टि से मानी जाती है। मुखविवर को यदि सीमा मान ले तो जिस तरह ओठों के बाहर का भाग बाह्य कहलाएगा, वैसे ही कंठ के भीतर का भी।

क - आभ्यन्तर प्रयत्न -

आभ्यन्तर प्रयत्न चार माने गये हैं - (1) स्पृष्ट (2) ईषत्स्पृष्ट (3) विवृत (4) संवृत

(1) स्पृष्ट - स्पृष्ट शब्द का अर्थ है स्पर्श किया गया (स्पृश+त = स्पृष्ट) वर्गाक्षरों का (कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, पवर्ग के पचीस अक्षरों का) उच्चारण-प्रयत्न स्पृष्ट माना गया है, क्योंकि इनमें जिह्व कंठ से लेकर ओष्ठ तक अनेक स्थानों का स्पर्श करती है।

ईषत्स्पृष्ट – ईषत्स्पृष्ट का अर्थ है थोड़ा स्पर्श किया गया। कुछ ध्वनियाँ ऐसी हैं जिनमें स्थान और करण का पूरा स्पर्श नहीं होता, बल्कि हलका-सा स्पर्श होता है। उन्हें ही ईषत्स्पृष्ट कहते हैं, जैसे- य व। ईषत्स्पृष्ट को ही आज कल की पारिभाषिक शब्दावली में अर्द्धस्वर कहते हैं। पहले इन्हें ही अन्तःस्थ कहते थे। अन्तःस्थ का अर्थ है बीच में रहने वाला- (अन्तः + स्थ) अर्थात् वे ध्वनियाँ जिनकी स्थिति स्वर और व्यंजन के बीच की हो। इस प्रकार अर्थ की दृष्टि से अन्तःस्थ और अर्द्धस्वर में कोई अन्तर नहीं है। अर्द्धस्वर कहें या अन्तःस्थ, बात एक ही है।

(3) विवृत - विवृत का अर्थ है खुला हुआ। विवृत प्रयत्न की आवश्यकता स्वरों के उच्चारण में होती है, क्योंकि जैसा हम आगे देखेंगे, स्वरों का उच्चारण करते समय किसी स्थान का स्पर्श नहीं होता, बल्कि मुखविवर बिल्कुल विवृत अर्थात् खुला रहता है।

(4) संवृत – संवृत विवृत का उलटा है। विवृत का अर्थ है खुला हुआ और संवृत का बन्द। संवृत प्रयत्न का व्यावहारिक उपयोग अधिक नहीं पाया जाता, क्योंकि मुखविवर यदि सर्वथा संवृत (बन्द) ही रहे तो ध्वनियों का उच्चारण सुनायी नहीं पड़ सकता।

बाह्य प्रयत्न - बाह्य प्रयत्न ग्यारह हैं - (1) विवार, (2) संवार, (3) श्वास, (4) नाद, (5) अघोष, (6) घोष, (7) अल्पप्राण, (8) महाप्राण, (9) उदात्त, (10) अनुदात्त और (11) स्वरित।

बाह्य प्रयत्न मुख्यत: स्वर-तन्त्री में होते हैं। इसमें तीन बातों पर ध्यान दिया जाता है, (1) स्वर-तन्त्री की अवस्था, (2) प्राणवायु की गति और (3) स्वर-तन्त्री की अवस्था एवं प्राणवायु की गति के कारण होने वाला घर्षण। स्वर-तन्त्री की अवस्था के आधार पर विवार एवं संवार प्रयत्न, प्राण-वायु की गति के आधार पर श्वास एवं नाद प्रयत्न तथा दोनों को मिलाकर होने वाले घर्षण के आधार पर अघोष एवं घोष प्रयत्न होते हैं। प्राणवायु की मात्रा अल्पप्राण एवं महाप्राण का निर्धारण करती है।

(1) विवार - विवार का अर्थ है खुलना। जब स्वर-तन्त्रियाँ वर्णत: विवृत खुली रहती हैं तो विवार प्रयत्न होता है।

(2) संवार - संवार का अर्थ है बद होना। इनमें स्वर-तन्त्रियाँ बन्द रहती हैं।

(3) श्वास - वागिन्द्रियों की चर्चा के प्रसंग में हम देख चुके हैं कि स्वर-तन्त्रियों की स्थिति दो प्रकार की होती है - एक तो खुली और दूसरी बन्द। खुली स्थिति में श्वास - नि:श्वास की क्रिया निर्बाध रूप

से चलती रहती है। निःश्वास का निर्बाध निकलना श्वास-प्रयत्न के भीतर आता है।

(4) नाद - श्वास- प्रयत्न में निःश्वास निर्बाध रूप से बाहर निकल जाता है किन्तु नाद में स्वर-तन्त्रियाँ मिलती हैं और निःश्वास में बाधा उत्पन्न होती है। स्वर-तन्त्रियों के द्वारा बाधित होने से ही नाद उत्पन्न होता है।

(5) अघोष - श्वास प्रयत्न में घर्षण के अभाव को ही अघोष कहते हैं। प्रत्येक वर्ग के प्रथम और द्वितीय वर्ण (क ख, च छ, ट ठ, त थ, प फ) अघोष है।

(6) घोष - नाद प्रयत्न में स्वर-तन्त्री में होने वाले घर्षण का दूसरा नाम घोष है। नागरी वर्णमाला में प्रत्येक वर्ग के तृतीय चतुर्थ और पंचम वर्ण (ग घ ङ, ज झ ञ, ड ढ ण, द ध न, ब भ म) घोष हैं।

(7) अल्पप्राण - प्राण का अर्थ है वायु और अल्प का अर्थ है थोड़ा, अर्थात् थोड़ी वायु का जिसमें प्रयोग हो वह प्रयत्न अल्पप्राण कहलायेगा। प्रत्येक वर्ग के प्रथम, तृतीय और पंचम वर्ण अल्पप्राण हैं।

(8) महाप्राण - महाप्राण में वायु का प्रयोग अधिक होता है इसीलिए इसे महाप्राण कहते हैं। प्रत्येक वर्ग के द्वितीय और चतुर्थ वर्ण महाप्राण हैं।

रमेश कुमार यादव
असिस्टेंट - प्रोफेसर
हिन्दी - विभाग
डी. के. कालेज, डुमरॉव
बक्सर, बिहार